UGC CARE LISTED PERIODICAL
ISSN : 2278 - 6864

Education and Society

Since 1977

Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

Indian Institute of Education

J. P. Naik Path, 128/2, Kothrud, Pune-411 038

Scanned with OKEN Scanner

16	A STUDY ON CONSUMER PERCEPTION ON GREEN PRODUCTS AT EAST GODAVARI, ANDHRA PRADESH	114
17	ENHANCING IN-SERVICE TEACHERS' AWARENESS OF ENVIRONMENTAL EDUCATION AND SUSTAINABLE DEVELOPMENT IN HIGHER SECONDARY INSTITUTIONS	125
18	UNLOCKING INNOVATION: THE ROLE OF CREATIVITY IN STUDENT'S PROBLEM-SOLVING ABILITY	131
19	MGNREGA – A WAY TO CLIMATE RESILIENT APPROACHES: PROSPECTS AND CHALLENGES	139
20	कमार जनजाति का सांस्कृतिक अध्ययन	145
21	स्वाधीनता आंदोलन में छत्तीसगढ़ की जनजातीय विद्रोह का योगदान	151
22	"CUSTOMER PREFERENCES AND SATISFACTION IN THE AUTOMOTIVE INDUSTRY: A STUDY CONDUCTED IN INDORE DISTRICT"	154
23	INDIA'S NON-REFOULEMENT OBLIGATIONS UNDER INTERNATIONAL LAW: A CRITICAL ANALYSIS OF ITS LEGAL STRUCTURE AGAINST DEPORTATION OF REFUGEES	161
24	MENTAL TOUGHNESS: A BLUEPRINT FOR ENHANCING RESILIENCE AND PERFORMANCE IN YOUNG FOOTBALL PLAYERS	168
25	SURVEY ON SPORTS COMPETITION ANXIETY OF MIZORAM PREMIER LEAGUE FOOTBALL PLAYERS OF AIZAWL, MIZORAM	176

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Education and Society (शिक्षण आणि समाज)
(UGC CARE Journal)
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

कमार जनजाति का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ मोहन कुमार, (अतिथि व्याख्याता, विषय - इतिहास) स्व. डारन बाई तारम शासकीय महाविद्यालय गुरुर, जिला बालोद , छत्तीसगढ़. ई-मेल mohansahu232@gmail.com

परिचय- प्रत्येक देश की अपनी-अपनी संस्कृति होती है जो उसकी अस्मिता का आधार होती है। देश के प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी लोक संस्कृति है जो वहां के भौगोलिक परिवेश और लोक परंपरा से प्रभावित है। देश के अन्य राज्यों की तरह छत्तीसगढ़ राज्य की भी अपनी संस्कृति है। यहां का लोक जीवन तीन तत्वों से ओत-प्रोत है। पहला है प्रकृति से अनन्य प्रेम, दूसरा है कठोर श्रम और तीसरा है उनका सरल स्वभाव ये तीन तत्व ही उनके लोक जीवन की लोक संस्कृति के मूल स्रोत है। छत्तीसगढ़ राज्य चारों तरफ से जंगलों और पहाड़ों से घिरे रहने के कारण यहां की अपनी एक अलग संस्कृति बन गई है। 1 जनजातियों की संस्कृति छत्तीसगढ़ के संदर्भ में भारतीय लोक संस्कृति का ही अभिन्न अंग है। इसके अंतर्गत उन सभी परंपरागत शिल्पों को लिया जाना चाहिए जो अनुकरण से सीखे जाते है। 2 इसके साथ ही इसके अंतर्गत वे सभी प्रकार की अभिव्यंजनायें भी इसका अविभाज्य अंग है जो परंपरागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती है तथा उन्हें समकालीन समाज की मान्यता प्राप्त है। इस तरह जनजातीय संस्कृति की परिधि के अंतर्गत जनजातीय लोक कथाएं, गीत, संगीत, नृत्य, धार्मिक विश्वास, उत्सव अलंकरण एवं सौंदर्याभिव्यक्ति सभी शामिल किये जाने चाहिए। जनजातियों में धार्मिक विश्वास, अर्थव्यवस्था, सामाजिक आचार एवं सांस्कृतिक अभिव्यंजना की विभाजक रेखाएं खींचना कठिन है।

कमार जनजाति की परिचय - कमार की उत्पत्ति के विषय में अनेक मान्यताएँ / कथाएँ प्रचलित है। प्रसिद्ध कथा है कि भगवान शिव की विनाश लीला के पश्चात् पुनः पृथ्वी एवं मनुष्य का निर्माण हुआ। मनुष्य के पास मात्र बाँस की एक टोकरी थी। उसके हाथ में कुल्हाड़ी एवं तीर-धनुष देकर, भगवान शिव ने कहा कि जाओ स्थानान्तरित कृषि करो और शिकार करो, तुम्हारी स्त्रियाँ बाँस के बर्तन भी बना सकती है। ये स्वयं को गोंड का वंशज मानते हैं। इनके आचार-व्यवहार गोंड़ो के समान हैं, यह अत्यन्त पिछड़ी हुई जनजाति है। कई अंग्रेज लेखकों ने इन्हें गुहावासी बतलाया है। 3 बाल (1878) द्वारा लिखित जंगल लाइफ इन इण्डिया के अनुसार "नदी की घाटी के साथ-साथ बढ़ते हुए, मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ एक नितांत जंगली लोगों की आबादी निवास करती थी और जिसे उसके पड़ोसी, कमार नाम से पुकारते थे। वे अपनी आदत के अनुसार गुहावासी थे तथा मछलियों और कंद-मूलों से अपना जीवन यापन करते थे। यह ध्यान देने योग्य है कि वे जातियाँ, मौसम की परेशानियों से अपने को कितना कम बचा पाती है। उन गुफाओं में से एक में, हवा से बचने का कुल साधन बेतरतीब रखी हुई कुछ टहनियाँ थी। एक गुफा में मैंने कुछ मुर्गे मुर्गियों तथा दूसरी गुफा में मैंने एक बकरा बँधा देखा।"
एफ. के. हेवेट के अनुसार " कमार कृषि कार्य करने को साफ मना करते है और साधारणतया जंगली फलों और छोटे शिकार पर अपना जीवन-यापन करते हैं। एम. ए. शेरिंग के अनुसार " कमार जनजाति जंगल में निवास करते हैं, जहाँ वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे जंगली उत्पाद पर जीवन यापन करते हैं। उन्हें कृषि से सख्त नफरत है। द्रविड़ प्रजाति के कमारों के 2 उपभेद हैं- 1. बुधरजिया 2. मांकड़िया या पहाड़ पटिया। बुधरजिया उच्च वर्ग तथा मांकड़िया निम्न वर्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं। ये साँप, बन्दर और मगर का माँस नहीं खाते हैं। इनके अलावा अन्य समस्त जानवरों का माँस खाते हैं। मांकड़िया द्वारा बन्दरों के माँस का भोजन किये जाने के कारण, उन्हें निम्न वर्ग के अन्तर्गत मान्य किया जाता है। कमार जनजाति के लोग मुख्यतः पुरानी जमींदारियां बिंद्रानवागढ़, सुअरमार तथा फिंगेश्वर इत्यादि क्षेत्रों में प्रमुखता से पाई जाती है। रायपुर, धमतरी, गरियाबंद एवं महासमुद जिलों में इनका विस्तार है। रायपुर, गरियाबंद जिले के छुरा, मैनपुर विकासखंडों, धमतरी जिले के सिहावा (नगरी) विकासखंड में कमार जनजाति रहवास है। कमारी बोली आर्यन एवं आदर्श द्रविडियन भाषाओं के मेल से बनी है। कहीं-कहीं क्षेत्रीय प्रभाव के कारण इसमें छत्तीसगढ़ी, उड़िया एवं हल्बी भाषा का सम्मिश्रण परिलक्षित होता है। अत्यंत पिछड़े होने के कारण इन्हें भारत सरकार द्वारा अत्यधिक पिछड़ी जनजातीय के अंतर्गत मान्य किया है। 4 कमार अंचल की सुरम्य हरित घाटी उच्च किस्म के साल, सागौन एवं अन्य इमारती लकड़ी के वृक्षों से भरपूर है। मैनपुर पहाड़ी एवं निकटस्थ क्षेत्रों बांसों के विशाल भंडार से भरे पड़े हैं। तेंदू, अचार एवं महुआ प्रमुख फलदार वृक्ष है, झाड़ियों एवं बेलों की बहुतायत है, जंगली कंदमूल, फल, जड़ एवं पनियां भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। नदियों एवं पहाड़ी नालों में मछलियां बहुतायत में पाई जाती है।

कमार जनजाति का वस्त्राभूषण- कमार जनजाति का पहनावा बहुत ही सरल है। पुरुष वर्ग में धोती अथवा पटुका पहनते हैं। अधिकतर वे लंगोटी लगाये रखते है। सामान्यतः देखा गया है कमार गांव में रहने पर, जंगल जाने एवं खेत में जाने पर कपड़े नहीं पहनते हैं। साप्ताहिक बाजार जाते है तबही कुर्ता पहनते हैं। हमेशा नंगे पांव रहते हैं। इसी तरह से स्त्री वर्ग में पहनावा अत्यंत साधारण है। सामान्यतः वे एक साड़ी पहनती है जिसके एक छोर से वे अपने दायें कंधे एवं वक्ष स्थल को ढकती है। साड़ी घुटनों के ऊपर ही रहता है। कभी-कभी ये इसे ऐसा लपेटती है जिसमें गोदी में बच्चा या कभी कोई सामान रखा जा सके। छोटी लड़कियां भी एक कपड़े का टुकड़ा कमर पर लपेटे रहती है। स्त्री-पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करती है। 5 हाथ में कड़े एवं अंगुली में अंगूठी भी पहनती है। इनका आभूषण एल्युमिनियम से बने होते हैं। स्त्रियां भी हाथ में कड़े पहनती है, साथ ही गले में मनके से बने मालाएं पहनी रहती है। अपनी बालों को सूती फुंदरा से कसे रहती है। पैरों में एल्युमिनियम की बनी पैरी पहनी रहती है। आंगिक अलंकरण (गोदना) भी वृद्ध महिलाएं दोनों हाथ, पैर, गले में, मस्तक, घुटने के नीचे इत्यादि अंगों पर गोदना गुदवाती है।

शाररिक संरचना - कमार जनजाति के लोग मध्यम

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

कद एवं गठीले बदन के होते हैं। युवक छरहरे, बलिष्ठ तथा आकर्षक व्यक्तित्व के होते हैं। रंग गेहुँआ एवं सिर पर बाल घने काले होते है। लेकिन मूंछ और दाढ़ी घनी नहीं होती। काली व गहरी आँखें वाली होती है।

घर की बनावट- कमार जनजाति का घर झोपड़ी नुमा होता है। इसमें एक कमरा होता है जिसमें घरेलू काम में आने वाले सामग्रियां रखी जाती है। देवी-देवता और रसोई के लिए मध्य में एक कमरा होता है। अधिकांश घरों में एक छोटा सा छप्पर होता है जिसे मंड़वा कहते है। यहीं पर खाली समय में या काम से फुरसत मिलते ही बाते करते है और मनोरंजन भी करते हैं। पालतु पशुओं के लिए भी एक कमरा होता है। घर बनाने के लिए चार लकड़ी के खम्भे चारों ओर गाड़ दिए जाते हैं। फिर दोनों तरफ से लकड़ी को जोड़ते हुए लकड़ी बांधी जाती है। घर की दीवाल छोटी-छोटी डंगालों से बनाई जाती है जिन्हें बांस के टुकड़ों से बांधकर समतल बनाकर गीली मिट्टी से लीपते है और फिर गोबर से पुताई करते है। बरसात और धूप से बचने के लिए घर के ऊपर सागौन व साल वृक्ष के पत्ते व घास-फूस से छाते है। घर की बाहरी दीवाल को पुताई करने के बाद कला-कृतियों की चित्रकारी बनायी जाती है। घरेलू कार्य की उपयोगी वस्तुएं- धान की पुआल से बने अनाज रखनी की कोठी, महुल पत्तों से बनी छोटी टोकनियां, बांस की बनी टोकनियां, बांस की बनी झांपी इन सब की अतिरिक्त अन्य वस्तुएं जैसे - पानी रखने के लिए मिट्टी के बर्तन, चांवल और दाल पकाने के मिट्टी के हांडी, सब्जी पकाने के लिए कलौंजी, लकड़ी का करछुल व डुवा, धान कुटाई के लिए मूसर, बैठने व सोने के लिए बांस की चटाई, तीर , धनुष, बारिश से बचने क े लिए खुमरी, कुल्हाड़ी, कंद खोदने के लिए मोंगा, सूप, चक्की, आग जलाने के लिए चकमक पत्थर, लोहे का टुकड़ा तथा सेमल की रूई, लोटा, पानी भरने के लिए मटका, बांस की कटाई व छिलाई के लिए चाकू छुरी, महुआ पत्ते का दोना पत्तल, झाडु, कुलदेव गाता डुमा का स्थान। 6 कमारों के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद भगवान महादेव ने जब सभी को उनकी कार्य का बंटवारा किया तो "टंगिया" तीर कमान कमारों को प्रदत्त किये ताकि वे जंगल काटकर खेती का कार्य करें। तीर कमान से शिकार कर अपना जीवन यापन कर सके। आर्थिक जीवन अभी भी बेवरा अथवा डहिय ा कृषि एवं जंगलों पर निर्भर है। उनका पूरा श्रम जीवन बनाये रखने, प्रकृति से लड़ने एवं भूख की तृप्ति हेतु जूझने में ही लगता है। कमारों के जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत है- बांस से बनी वस्तुएं बनाना, अस्थायी कृषि (डहिया अथवा बेवरा), तेंदूपत्ता तथा महुआ पत्ता एकत्र करना , कंद मूल एकत्रित करना, शिकार करना तथा मछली पकड़ना, बाड़ी में मक्का एवं सब्जी उगाना, स्थानीय वन से पके फल एकत्र करना। डहिया कृषि में धान, माड़िया, कोदो की खेती करते है। वर्ष वार फसल उगाते है - प्रथम वर्ष- माड़िया, द्वितीय वर्ष - कोसरा, तृतीय वर्ष - उड़द, चतुर्थ वर्ष तिल/सरसों, पंचम वर्ष - माड़िया इस तरह से क्रमवार कृषि करते हैं। कमार जनजाति का अधिकांश समय बांस की टोकरी बनाने में व्यतीत होता है। महुल के पत्ते को एकत्रित कर बंडल बनाया जाता है, ये कार्य सितंबर माह से नवंबर माह तक अधिकांश करते है। अप्रैल से मई माह में तेन्दू पत्ता एकत्र करते है। यह पत्ता बीड़ी बनाने के काम आता है। इन सब के अतिरिक्त कमार जनजाति खपरे (कवेलू) बनाना, लाख, चिरोंजी एवं शहद एकत्र करना, पशुपालन एवं मुर्गी पालन, बकरी पालन भी करते हैं। तेन्दू एवं अचार, महुआ फूल, कुदरू कांदा एव ं आम उनके मुख्य भोज्य पदार्थ मुख्य भोज्य पदार्थ है।

कद के प्रकार मौसमों के अनुसार - पीठ कांदा - इसे बरसात लगने के पूर्व खोदा जाता है क्योंकि बारिश में खराब हो जाती है। इसका उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता है। **तेनगा कांदा-** इसे भी बरसात के पूर्व खोदा जाता है इसे भुनकर खाया जाता है। **करू कांदा या डांग कांदा** - कांदे की खुदाई मई एवं जून माह में किया जाता है तत्पश्चात् उबाल कर खाया जाता है। बेचांदी या कीलिया कांदा यह कांदा अगस्त सितंबर माह में उपलब्ध होता है इसे भी उबालकर खाया जाता है। केऊ कांदा - बरसात के पूर्व मिलता है इसे उबालकर खाना एवं सब्जी बनाकर उपयोग किया जाता है। **डुरू कांदा** - यह अक्टूबर-नवंबर माह में मिलता है इसे भी उबालकर खाया जाता है। **कुरील कांदा** - ये बांस की नई निकलती कोपलें है जिनका उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। इसी तरह से मौसमी सब्जियों में मिर्च, सेम, तरोई, चाई भाटा आदि विशेष है। कमार जनजाति का प्रिय शिकार खरगोश है इसे फांदा के माध्यम से पकड़ा जाता है। चूहे का भी शिकार करते हैं इसे भूनकर दोने पत्ते पर बांट कर खाते हैं। इन सबका व्यापार भी करते हैं।

साप्ताहिक बाजार- साप्ताहिक बाजार में बेचा जाता है और बदले में चांवल खरीदते हैं। अन्य खाने की वस्तुएं भी खरीदते हैं। साप्ताहिक बाजार छोटा और बड़ा होता है। मैनपुर का बाजार बड़ा बाजार है जो सुबह से शाम तक चलता है लेकिन इन्दगांव और उदनती छोटी बाजार है। सुबह 7:00 बजे से दोपहर 11:00 बजे तक समाप्त हो जाता है। मुद्रा के अलावा अन्य सामग्रियों से भी आदान-प्रदान किया जाता है। कुम्हार लोग मिट्टी के बर्तन के बदले धान लेते हैं। धान देकर सब्जी भी खरीदी जाती है। मुद्रा के बाद धान का उपयोग आदान प्रदान में किया जाता है। नगद के अलावा उधारी का प्रचलन है लोगों को विश्वास होता है कि बाद में पैसा देगा। बाजार में अनेक प्रकार की सामानों की खरीद बिक्री होती है जैसे - आभूषण, तेल, साबुन, जूते-चप्पल, तंबाकू, कुल्हाड़ी, कुदाली, बीड़ी, कपड़े, जंगली मुर्गे इत्यादि।

कुमार जनजाति के लोग संध्या के समय मंडवा के नीचे बैठ कर आराम करते हुए चोंगी से धूम्रपान का आनंद लेते हैं। और आपसी वार्तालाप करते हैं। अगर रात्रि भोजन में देर हुई तो लोक कथा, लोकोक्तियां अथवा गीतों का आनंद लेते हैं। वृद्ध लोग आप बीती घटनाओं की चर्चा करते हैं फिर भोजन करके सो जाते हैं।

कमार जनजाति का विवाह संस्कार- कमार जनजातीय समूह में एक ही गोत्र के लड़के लड़कियों में वैवाहिक संबंध नहीं होते। चचेरे-मौसेरे, भाई-बहनों में भी वैवाहिक संबंध वर्जित है। लेकिन मामा-बुआ के लड़के-लड़कियों से वैवाहिक संबंध को प्राथमिकता दी जाती है। 7 विवाह से पहले पुंछनी, मंगतरपी और सगाई की रस्में होती है। कमारों में विवाह का सारा खर्च वर पक्ष को उठाना पड़ता है। विवाह का मंडप

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

लड़के के घर पर पहले गाड़ा जाता है, फिर दूसरे दिन लड़की के घर पर। मंडप के बीचों बीच महुआ या सेमल की लकड़ी का खाम गाड़ा जाता है। मंडप को आम या जामुन के पत्ते से छाया जाता है। इनके विवाह में गढ़वा बाजा का विशेष महत्व है। लड़का का श्रृंगार करके, कुवांरी लड़कियां तेल चढ़ाती है। महलिया लड़के को गोद में लेकर खाम के चारों ओर सात भांवर घुमाता है। साथ में सुवासिन भी भांवर लगाती है। महिलाएं बारी-बारी से हल्दी लगाती है। बाराती महिला, पुरुष और बच्चे होते हैं। बारात अक्सर पैदल जंगली रास्तों से जाती है, चाहे कितनी भी दूर जाना हो। विवाह का सामान पर्रे और झांपी में रखी जाती है। परघौनी और भोजन के बाद विवाह का सामान लड़की पक्ष को सौंप देते हैं। टीकावन मउंर बांधकर टीकावन की रस्म होती है। तत्पश्चात् लड़की की बिदा कराके बारात अपने गांव लौटती है। लड़के के घर में दोनों को हल्दी चढ़ाते और तेल उतारते हैं। पानी के भीतर वर और वधू बारी-बारी से कलश छुपाने और ढूंढने का खेल खेलते हैं, जिसे पनबुड़ी खेल कहते है।

कमार जनजाति का जन्म संस्कार- जचकी के समय जच्चा को जमीन पर कपड़े की गुड़ी पर बैठाया जाता है। जच्चा अपने श्रम से बच्चे को जन्म देती है। गांव की अनुभवी सयानी जचकी कराने में सहयोग देती है। कठिन प्रसव में बैगा या गुनिया को बुलाकर देवता को हूम धूप दिया जाता है। कमारों में बच्चे की नार तीर की नोक या बांस काटने के चाकू से काटा जाता है। बाड़ी में गड्डा खोद कर नारफूल को गाड़ दिया जाता है। जच्चा को खाने में दाल भात, गरम पेज, काके पानी, छींद की जड़ और काके पानी की छाल को एक साथ पानी में उबालकर दिया जाता है। 6-7 दिन बाद उसकी
नार झर जाती है उसी दिन छट्ठी मनाई जाती है। इसी दिन बच्चे का मुंडन किया जाता है। डेढ़ माह बाद हांडी भीतर का नेंग होता है जिसमें प्रसूता शुद्ध हो जाती है और घर की काम में सहयोग देती है। यदि छट्ठी को बच्चे का टीकावन नहीं किया गया तो इस दिन टीकावन करते है।

कमार जनजाति का मृतक संस्कार- सामान्य मृत्यु की स्थिति में मृतक को गाड़ा जाता है। मृतक को गाड़ने से पहले नहलाया नहीं जाता बल्कि उसके शरीर में हल्दी चुपड़कर माथे पर हल्दी का टीका लगा दिया जाता है। शव को तेन्दू की लकड़ी और बांस की बनी "चोली" (अर्थी) पर लिटाकर सफेद कपड़े के कफन से ढंककर गांव के बाहर दक्षिण की ओर नदी के किनारे या जंगल में श्मशान ले जाया जाता है। जहां गड्ढा खोदकर, कफन बिछाकर, उस पर शव को लिटा देते हैं। मृतक का सिर उत्तर और पैर दक्षिण की ओर रखा जाता है परंतु गर्दन थोड़ी सी पूर्व दिशा की ओर घुमा दी जाती है।

सबसे पहले मृतक का लड़का एक मुट्ठी मिट्टी शव के ऊपर डालता है, फिर अन्य लोग डालते हैं अंत में शव को अच्छी तरह मिट्टी से ढक दिया जाता है और सिर की तरफ एक बड़ा सा पत्थर रख दिया जाता है। शव यात्रा से लौटकर सब लोग नहाते है। तीन या पांच दिन में तीज-नहावन होता है। तब तक मृतक का सारा परिवार सूतक में रहता है। मृतक के घर आग भी नहीं जलायी जाती। समधी सगे लोग मृतक के यहां खाना भेजते हैं। उनमें से ही एक दोनी भात मृतक के नाम से गांव के चौराहे पर रखा जाता है। तीज नहावन के दिन मृतक के घर की हांडी-कुंडी फेंक दी जाती है, घर की लिपाई पुताई और कपड़ों की धुलाई होती है। मृतक के परिवार के लोग हजामत बनवाते हैं और बेटे सिर मुड़वाते है। परिवार के सदस्य नहाते हैं। नहाने के बाद हल्दी तेल चुपड़कर शुद्धीकरण होता है। मृतक की पत्नी की चूड़ियाँ तीज नहावन के दिन फोड़ी जाती है। समधी परिवार से विधवा के लिए नयी साड़ी और "पटा" भेजी
जाती है।

मृतक के घर नयी हंडी में खाना बनती है। मृतक की जीवात्मा बुलाई जाती है जिसे जीव उतारना कहते है मृतक के नाम से एक दोनी में भात और एक दोनी में पानी रखकर उत्सर्ग किया जाता है। उसके बाद मरनी भोज होता है। जिसमें सब लोग थोड़ी-थोड़ी शराब भी पीते है। मरनी भोज तीज नहावन के दिन या साल के भीतर कभी भी हो सकता है। होली त्यौहार में पितर-मिलौनी होती है। इसी समय मृतक को पूर्वजों में मिलाया जाता है। इस रीति के बिना मृतक परिवार के पूर्वजों में नहीं गिना जाता है। यदि किसी व्यक्ति को बाघ या भालू मार डाले तो उसकी लाश को घर नहीं लाया जाता। उसे उसी स्थान पर गाड़ दिया जाता है। यदि किसी गर्भवती या प्रसूता की मृत्यु होती है तो शव को श्मशान में गाड़ने के बाद उस जगह को "बैगा" मंत्र से बंधा दिया जाता है। मिट्टी ढकने के बाद उस पर कांटे बिछा दिये जाते हैं ताकि वह भूत बनकर किसी को न सताये। जब किसी नवजात शिशु की मृत्यु छट्ठी से पहिले हो जाती है तो उसे महिलायें ही गाड़ती हैं।

कमार जनजाति के देवी-देवता- बाम्हन देव - सबसे बड़ा देव जिसकी पूजा "जात्रा" त्यौहार के अवसर पर की जाती है, काले बकरे की बलि दी जाती है।

भीमा देव- गोल पत्थर के आकार के सरई के पेड़ के नीचे स्थान बनाया जाता है। बकरे, मुर्गे की बलि देते हैं और नारियल समर्पित किया जाता है।

मुरमाटी- यह इनके गोत्र भूमि की मिट्टी है जिससे इनके पूर्वजों का सम्बन्ध होना माना जाता है। नई फसल चढ़ाई जाती है तथा काली मुर्गी की बलि दी जाती है।

गाता डूमा- यह कुल देव है जिसे काले मुर्गे एवं बकरे की बलि दी जाती है तथा शराब अर्पित की जाती है। **हींगलाजिन-** ऐसी देवी जिन्हें खैरा रंग के बकरे की बलि चढ़ाई जाती है।

काली पाट- ऐसी देवी जिन्हें काली बकरी की बलि देते हैं।

कंकालनी- ऐसी देवी जिन्हें काली बकरी एवं काली मुर्गी की बलि चढ़ाई जाती है।

नरवाली- ऐसी देवी जिन्हें सफेद मुर्गी एवं केला चढ़ाया जाता है।

करियापाट- ऐसा देवता जिसे काला मुर्गा बलि में चढ़ाया जाता है।

जूनामठियार- ऐसा देव जिसे एक ही रंग का बकरा अर्पित किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

पोतिन- काली चूड़ियाँ तथा सिंदूर चढ़ाया जाता है और काली मुर्गी की बलि दी जाती है।

बड़े सालिन (बड़ी बहन) - नारियल चढ़ाते है एवं बकरी की बलि दी जाती है।

छोटे सालिन (छोटी बहिन) - जिसे मुर्गी की बलि देते हैं एवं नारियल अर्पित होता है।

बूढ़ा देव- बांझ को बच्चा देने वाला देवता है। बस्तारिन माता - साजा पेड़ के नीचे पत्थर गाड़कर इनका स्थान बनाया जाता है जिसमें दो त्रिशूल, मिट्टी का रूखा, चाकू लगे रहते है। चारों ओर लकड़ी की छोटी-छोटी खूंटिया रहती है।

कमार समुदाय में बैगा या गुनिया परम्परागत पद है, वह कभी झाड़फूंक, तो कभी जंगली जड़ी-बूटियों से रोगियों का इलाज करता है। झाड़फूंक के दौरान रोगी व्यक्ति के हाथ पकड़ कर वह मंत्रों का उच्चारण करता है एवं बीच बीच में प्रेतात्मा के नामों का उच्चारण भी करता जाता है। इस क्रिया के पश्चात् काली मुर्गी की बलि दी जाती है।

कमार जनजाति में अनेकों त्यौहार मनाये जाते हैं, जिनमें हरियाली, पोला, नवरात्रि, दशहरा, दीवाली, छेरछेरा, होली एवं पंचमी विशेष उल्लेखनीय हैं। जात्रा कमार जनजाति का महत्वपूर्ण त्यौहार है यह अगहन पून्नी (पूर्णिमा) जो दिसम्बर माह के अन्तिम सप्ताह में होता है।

संदर्भ-

1. गुप्ता, मदन लाल, छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं लोक आयाम के विभिन्न स्वरूप, प्रथम संस्करण-2003, प्रकाशक- भारतेन्दु साहित्य समिति बिलासपुर (छ.ग.), पृ. 1-2

2. तिवारी, शिव कुमार, मध्यप्रदेश की जनजातीय
संस्कृति, प्रकाशक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 1999, पृ. 1-2

3. तिवारी, शिवकुमार, शर्मा, कमल, मध्यप्रदेश की जनजातीयाँ समाज एवं व्यवस्था, प्रकाशक- मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पंचम संस्कारण-1999, पृ.122-125

4. तिवारी, काशीनाथ, शोध प्रबंध, पृ. 90-91 5. पांडेय, शिवकुमार, कमारः जन-जीवन, प्रकाशक म.प्र. आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्था, भोपाल, पृ. 5-10

6. वहीं पृ. 11-14

7 वही. पृ. 29-44

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Education and Society (शिक्षण आणि समाज)
(UGC CARE Journal)
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

स्वाधीनता आंदोलन में छत्तीसगढ़ की जनजातीय विद्रोह का योगदान

डॉ मोहन कुमार , (अतिथि व्याख्याता, विषय - इतिहास) स्व. डारन बाई तारम शासकीय महाविद्यालय गुरुर, जिला बालोद , छत्तीसगढ़. ई-मेल mohansahu232@gmail.com

भूमिका - भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्रति छत्तीसगढ़ अंचल का अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। भारत का राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ देश के जनगण की एक साझा लड़ाई थी। इस व्यापक मोर्चे में समाज के प्रत्येक वर्ग, समुदाय, जनजातीय एवं जन समुदाय के लोग उपनिवेशवादी शोषण का मुखर होकर विरोध करने के लिए आगे आये।

छत्तीसगढ़ में स्वाधीनता हेतु संघर्ष का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन गणराज्य के अवशेष छत्तीसगढ़ के आरण्यकों में स्वाधीनता के भाव कूट-कूट कर भरे हुये थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित इनकी आटविक वृत्ति ही पारदवृत्ति (शिकारीपना) की प्रवृत्ति में विकसित हुई थी। जुझारुपन यहां के आदिवासियों के संस्कारों में ओतप्रोत है और इसलिए मुसीबत के हर मोड़ पर इन्होंने अन्याय का डटकर मुकाबला किया था। ऐतिहासिक तौर पर चुंकि इनमें सैनिक वृत्ति के संस्कार रहे हैं, अतएव गुरिल्ला युद्ध के लिए इन्हें किसी से शिक्षण की जरुरत नहीं थी। 1

छत्तीसगढ़ की आदिवासी विद्रोह के कारण अंग्रेजों की दमनकारी नीति, वनों पर अधिकार करना, छत्तीसगढ़ के उत्सवों और संस्कारों पर ध्यान न देना, कर में बढ़ोत्तरी करना और आदिवासियों की आस्था को ठेस पहुंचाना जिनके कारण से जनता में विद्रोह की भावना पैदा हुई। 2

सन् 1857 ई. में भारतीय सैनिकों के द्वारा किया गया विद्रोह यद्यपि भारतीय स्वंत्रता के लिए किये जाने वाला भारतीयों का प्रथम प्रयास था, तथापि यहाँ यह उल्लेखनीय है कि छत्तीसगढ़ियों के लिए यह नौवां प्रयास था, क्योंकि छत्तीसगढ़ में 1774 ई. से ही अंग्रेजों को धूल चटाने का प्रयास यहाँ के रणबांकुरे आदिवासियों ने किया था। अतः ऐसे शासन के प्रति आरंभ में ही छत्तीसगढ़ में अस्वीकृति का भाव था। यही कारण है कि कंपनी सरकार की स्थापना के साथ ही छत्तीसगढ़ियों द्वारा उसे उखाड़ फेंकने के प्रयत्न आरंभ हो गए थे।

बस्तर में विद्रोह - उक्त मुक्ति संग्राम बस्तर की धरती से संगठित नहीं हुआ था, अपितु वह उस समय सहसा बस्तर में छिड़ गया, जब समुचा छत्तीसगढ़ आग की लपटों से खेल रहा था। 1854 ई. में बस्तर अंचल पुरी तरह अंग्रेजी-शासन के अधिन हो गया था। इस नए शासन से न तो राजा भैरमदेव प्रसन्न थे, न उनके दिवान दलगंजन सिंह और न ही यहाँ की आदिवासी जनता। मार्च 1856 के अंत तक दक्षिण में आंदोलन तीव्र गति पर था। लिंगागिरी के तालुकेदार धुर्वाराव माड़िया जनजाति का था। धुर्वाराव ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध का बिगुल बजा दिया। उसने बस्तर के राजा भैरमदेव से भी निवेदन किया कि वह भी गैर कानूनी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह कर दें। माड़िया आदिवासी अपनी सैनिक गतिविधियों के लिए पहाड़ियों को ही केन्द्र बनाए हुए थे। वे पूरी तरह छापामार युद्ध का अभ्यास करते और अंग्रेजों से सम्बंध रखने वाले लोगों पर घात लगाकर हमला करते। 3 सबसे महत्वपूर्ण संघर्ष 3 मार्च 1856 को चिन्तलनार में हुआ। अपने तीन हजार साथियों के साथ धुर्वाराव चिन्तलनार की पहाड़ियों पर घात लगाकर बैठ गया और वहाँ से प्रातः 8 बजे गुजरने वाली अंग्रेजी सेना पर टूट पड़ा। घात-प्रतिघात की स्थिति सायंकाल तीन बजे तक चलती रही। परिणाम स्वरूप भोपालपटनम का एक मारा गया जिसके विरोध में 460 मारिया औरतें और बच्चों को बंदी बना लिया गया, जिनमें धुर्वाराव की पत्नी और बच्चे भी थे। धुर्वाराव को पकड़ लिया गया और उसे फांसी दे दी गयी।

सोनाखान में विद्रोह - छत्तीसगढ़ अंचल में तत्कालीन रायपुर जिले की बलौदाबाजार तहसील का गाँव सोनाखान क्रांति का तीर्थस्थान है। क्रांति की आग में पूरे गाँव ने तप कर और स्वयं वीर नारायण सिंह ने बहादूरी के साथ तोप के सामने खड़े होकर अपना आत्मोत्सर्ग कर अपने अंचल के नाम को सार्थक किया है। सोना आग में तपकर प्रखर कंचन साबित हुआ। 1857 की क्रांति के प्रमुख क्रांतिकारी नारायण सिंह ने देशभक्ति, शौर्य और बलिदान का जो उदाहरण प्रस्तुत किया था, वह छत्तीसगढ़ के जनमानस पर सदा के लिए छा गया है। इस क्रांतिकारी की वीर गाथा इस क्षेत्र में आज भी घर-घर में व्याप्त है।

Scanned with OKEN Scanner

ISSN: 2278-6864
Vol-48, Issue:02, No.09, April-June : 2024

सारंगढ़ में विद्रोह - सारंगढ़ में अंग्रेजों ने कमलसिंह नामक क्रांतिकारी को बंदी बना लिया और ब्रिटिश सरकार ने सन् 1867 ई. में बलवे के अपराध में फाँसी पर चढ़ा दिया गया था। जिसके विरोध में जनता नाराजगी व्यक्त किया। 4

पेड़ के बदले सिर - बस्तर का कोई विद्रोह (1859 ई0) 1857 के मुक्तिसंग्राम की लपटें पूरी तरह शांत भी नहीं हुई थीं कि दक्षिण बस्तर में आदिवासी जनता ने शालवृक्षों के काटे जाने के खिलाफ अपने विद्रोह के झंडे को फहरा दिया। जिसके चलते सन् 1859 ई. के कटाई के मौसम में आदिवासी जनता ने सर्वानुमति से यह निर्णय लिया कि अब बस्तर के एक भी शाल वृक्ष को कटने नहीं दिया जाएगा।

फोतेकल जमींदारी के अंतर्गत रहने वाले आदिवासियों को उस समय 'कोई' कहा जाता था, जिन्हें आज हम दोर्ला तथा दंडामी माड़िया कहते हैं। कर्नल हॉग ने अपनी रिपोर्ट ऑफ विज़िट टु जगदलपुर में इन जमींदारों के विद्रोह का सजीव चित्र प्रस्तुत किया था। 'कोई' लोग इंद्रावती नदी के तट से लेकर निजाम क्षेत्र को कंपापेट तक फैले हुए है। बस्तर के 'कोई' लोगों में असंतोष के भड़कने का मूल कारण था कि ब्रिटिश सरकार ने यहाँ के जंगलों का ठेका हैदाराबाद के व्यापारियों को दिया था। हैदराबाद का लकड़ी का व्यापारी हरिदास भगवानदास बहुत जालिम किस्म का व्यक्ति था और उसी ने बस्तर के सागौन को काटने का ठेका लिया था । दक्षिण बस्तर में जब सागौन की कटाई का सिलमिला प्रारंभ हुआ, तो बस्तर के आदिवासियों के गाँव हैदराबाद के ठेकेदारों के चंगुल में फस गए। ग्रामवासियों का हर प्रकार से शोषण हुआ । ब्रिटिश सरकार हैदराबाद क्षेत्र में रेलवे की पटरियां बिछा रही थी और इधर उसके लिए बस्तर के सागौन वृक्षों के कटने से बस्तर के आदिवासी पटरी पर उत्तर आए थे। आदिवासियों को जब यह खबर लगी तो वे भालों-मशालों को लेकर जंगल की ओर दौड़े। वहाँ उन्होंने लकड़ी की 'टालों' को जला दिया तथा 'आराकसों' (आरा चलाने वालों) के सिरों को काट डाला। 'कोई' आन्दोलन का नारा था एक शाल वृक्ष के पीछे एक व्यक्ति का सिर काटना है यह आन्दोलन इतना तीव्र था । एक हैदराबाद के निजाम को बस्तर से अपने लोगों को हटाना पड़ा। अंत में हार मानकर ग्लसफर्ड को उक्त ठेकेदारी की प्रथा की समाप्त करना पड़ा। 5

मुरिया विद्रोह (1876) - बस्तर के राजमुखिया लोगों के बीच सरकार के खिलाफ असंतोष की एक घटना 1876 ई. में घटित हुई थी। घटना इस प्रकार है- 28 फरवरी 1876 बस्तर के राजा भैरमदेव वेल्स के युवराज से भेंट के प्रयोजन में जगदलपुर से रवाना हुए। वे दक्षिण बस्तर में 13 किलो मीटर तक ही गए होंगे कि बड़ा मारेंगा नामक स्थान पर भारवाहकों और कहारों ने सिर-कंधों ने बोझ उतार कर आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। राजा के पूछने पर उन्होंने कहा " आप अंग्रेज में मिलने क्यों जा रहे है? अंग्रेज आपको वहाँ से लौटने नहीं देंगे। सरकारी मुंशी हमें लूटते हैं, तो क्यों नहीं आप अपने बजाय उन्हें वहाँ भेज देते ? आदिवासी प्रजा राजा की इस आज्ञा का पालन नहीं करती है इसलिए उसे दंड दिया जाता है। सन् 1876 ई. की इस घटना में मुरियाओं ने धैर्य, अहिंसा व एकता का जबर्दस्त परिचय दिया और भ्रष्ट व अन्यायी दिवान व मुंशी से पिछे छुड़ाने में कामयाब हुये।

यद्यपि अहिंसा आदिवासियों के लिए अपरिचित व विजातीय आयुध था, किंतु बस्तरराज के खिलाफ लड़ाई में मुरियाओं ने इस आयुध का सफल प्रयोग किया। आदिवासियों के मन में बेगार और शोषण के खिलाफ पनपे आक्रोश और उसके नायाब प्रतिकार को रेखांकित करता है, जो ब्रिटिश राज के खिलाफ थे।

बस्तर की रानी के द्वारा विद्रोह (1878-82) - 1878 ई. में बस्तर के राजा भैरमदेव (1853-1891) की महारानी जुगराजकुंअर ने अपने पति तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक अनूठा विरोध किया था, जिसे बस्तर के सरकारी अभिलेखों में 'रानी चो रिस' (रानी का कोप) कहा जाता है। रानी का यह संघर्ष लगातार आठ वर्षों तक चलता रहा और अंत में रानी विजयी हुई।

रानी के उक्त विरोध का मूल कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार के आदेश पर राजा भैरमदेव ने एक मुस्लिम महिला नावाबाई से विवाह किया था, जबकि इससे पूर्व राजा के पहले से ही दो पत्नियां थीं - जुगराजकुंअर देवी तथा सुवर्ण कुँअर देवी। भैरमदेव ने फ्रेजर के कहने में यह तीसरा विवाह उस युग की प्रचलित परंपरा के खिलाफ एक विधर्मिणी से रचाया था। जुगराजकुंअर देवी के तीखे तेवर के कारण बस्तर की महिलाएं राजा भैरमदेव के खिलाफ सड़कों पर उतर आयीं तथा उनका नारा था कि भैरमदेव या तो नावाबाई को छोड़ें अथवा बस्तर की राजगद्दी को छोड़ दें। संभवतः यह नारी मुक्ति का भारत में लड़ा जाने वाला प्रथम विद्रोह था। अंततोगत्वा ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। 6

Scanned with OKEN Scanner

पहाड़ी कोरबा विद्रोह (1883 ई.)- बस्तर में जिस प्रकार राजमुरिया उत्तेजित थे, उसी प्रकार सरगुजा में पहाड़ी कोरबा ब्रिटिश सरकार को लगातार चुनौती दे रहे थे। इन पहाड़ी कोरवाओं ने अनेक बाजारों को लूट लिया तथा अनेक बार ब्रिटिश सेना के साथ इनका युद्ध हुआ। अंग्रेजों ने दमन चक्र चलाया तथा अनेक पहाड़ी कोरवा या तो मारे गए या बंदी बना लिए गए। इस प्रकार 1883 ई. का पहाड़ी कोरबा विद्रोह थोड़े समय में ही समाप्त हो गया। इसी प्रकार 1910 ई. में ये पहाड़ी कोरवा पुनः आंदोलित हो उठे तथा इन्होंने अनेक सरकारी कर्मचारियों को मार डाला तथा थानों को लूट लिया।

बस्तर का भुमकाल (1910)- छत्तीसगढ़ की बीसवीं सदी के प्रारंभ का सच यह है कि पंडित रविशंकर शुक्ल शिक्षक की भूमिका का निर्वहन करते हुए अपने छात्रों में क्रांति के बीजों का भी रोपण कर रहे थे। वे सबसे पहले खैरागढ़ हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक बने। पुनः छत्तीसगढ़ स्टेट एजेन्सी की मांग रविशंकर शुक्त बस्तर के महाराजा रुद्रप्रतापदेव के शिक्षक नियुक्त हुए। 1904 ई. से 1906 ई. तक पंडित रविशंकर शुक्ल ने जगदलपुर में रुद्रप्रतापदेव को राष्ट्रीयता और क्रांति का पाठ पढ़ाया। अपनी गरम पंथी विचारधारा के कारण वे समझते थे कि 'स्वराज हमारा जन्म मिद्ध अधिकार है' और इसकी प्राप्ति के लिए वे क्रांति के मार्ग को भी अनुचित नहीं मानते थे।

प्रमुख शिष्यों में से एक है खैरागढ़ का पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी है जिसके ग्रंथों में पं. रविशंकर शुक्ल के राजनीतिक जीवन का ज्ञान होता है। ब्रिटिश बस्तर पर अधिकार करने के प्रयास में थे, किंतु 1910 ई. तक वे सार्वभौम शक्ति तब बन पाए, जब उक्त भुमकाल से पृथ्वी थर्रा उठी। है कोई राष्ट्र का ऐसा अंचल, जहाँ की जनता ने लगातार सवा सौ वर्षों तक अपनी स्मिता की रक्षा के लिए 10 बार शस्त्र उठाया हो? हर बार की तरह 1910 के विप्लव का भी लक्ष्य था बस्तर में 'मुरियाराज' की स्थापना और ब्रिटिश राज को खत्म करना। 7

बस्तर के आदिवासियों ने इससे पूर्व 9 बार इस्ट इंडिया कंपनी" तथा ब्रिटिश राज के खिलाफ सशस्त्र क्रांति की थी। गुण्डा धूर के नेतृत्व में लड़ा जाने वाला यह दसवां तथा अंतिम मुक्ति संग्राम था। बस्तर के आदिवासियों ने 'मुरियाराज' की स्थापना के लिए गुंडा धुर की अगुवाई में विद्रोह के झंडे को समूचे बस्तर में फहरा दिया था।

निष्कर्ष- स्वाधीनता आन्दोलन में छत्तीसगढ़ के आदिवासियों का योगदान महत्वपूर्ण है। वे अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी। बस्तर के पूरे जनजातीय समूह ब्रिटिशों से डटकर मुकाबला किया और सफलता पायी। जंगल और जमीन सदियों से आदिवासियों के अधिकार में है इसे कोई छिन नहीं सकता। परिणाम स्वरूप जब जब अंग्रेजों ने एकाधिकार करने का प्रयास किया, तब तब आदिवादियों ने आंदोलन किया। आज भी आदिवामियों ने अपनी संस्कृति और परंपरा को संजोए रखा है। जो किसी अन्य संप्रदाय के लिए आकर्षण का केन्द्र है। आदिवासी ही हमारे देश के मूल निवासी है।

संदर्भ - 1. मिथ, रमेन्द्रनाथ, छत्तीसगढ़ का इतिहास, शताक्षी प्रकाशन रायपुर, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 14-39
2. शुक्ल, हीरालाल, छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास, पृ. 150-183
3. लाला, जगदलपुरी, बस्तर का इतिहास एवं संम्कृति, म. प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल , 1994, पृ. 16-61
4. शुक्ल, हीरालाल, दण्डकारव्य का सांस्कृतिक इतिहास, नागपुर 1978
5. शुक्ल, हीरालाल, छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष, प्रकाशक मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, द्वितीय संस्करण 2004 पृष्ठ 281-200
6. गुप्त, प्यारेलाल, प्राचीन छत्तीसगढ़, प्रकाशक पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, प्रथम संस्करण 1973 , पृष्ठ 227 से 237 तक
7. ठाकुर, केदारनाथ, बस्तर भूषण , नवकर प्रकाशन कांकेर छत्तीसगढ़ , प्रथम संस्करण 1908, पुनर्मुद्रित संस्करण 2005

Scanned with OKEN Scanner

ISSN : 09755756

कला - वैभव

KALA - VAIBHAW

UGC CARE LISTED JOURNAL

संयुक्तांक 28 – 29 (वर्ष 2021–22, 2022–23)
विभागीय शोध – जर्नल (रेफरीड)

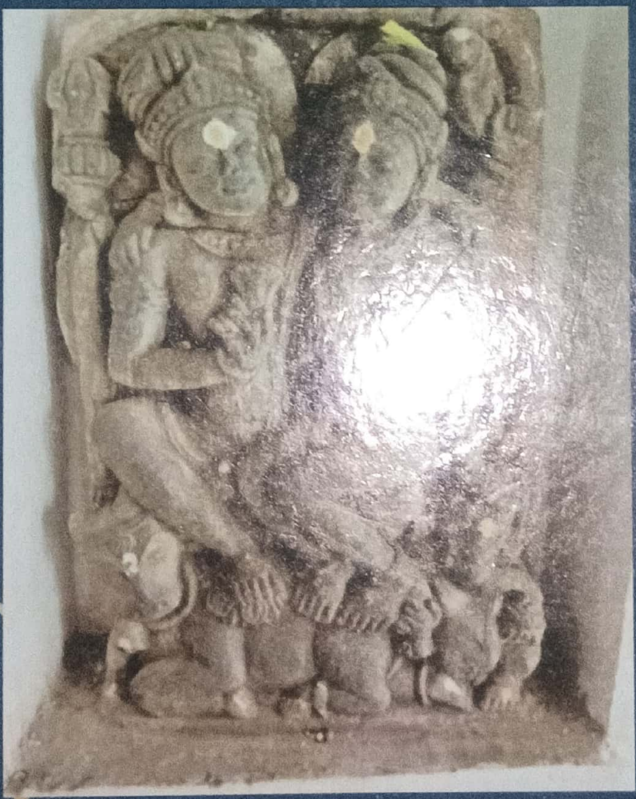

प्रधान संपादक
डॉ. मंगलानंद झा

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

Scanned with OKEN Scanner

कला–वैभव

संयुक्तांक 28–29 (वर्ष 2021–22, 2022–23)

भारतीय कला, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व, साहित्य का वार्षिक शोध जर्नल (रेफरीड)

(Included in UGC CARE List)

© प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)।

प्रकाशक : इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)–491881।

ISSN: 09755756

मुद्रक : छत्तीसगढ़ पाठ्य पुरतक निगम, रायपुर।

प्रधान संपादक : डॉ. मगलानंद झा,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।

कला–वैभव (संयुक्तांक 28–29) में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में वर्णित विषय–वस्तु/तथ्यों तथा निष्कर्षों इत्यादि का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों/रचनाकारों का है। संपादकगण अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

संपर्क :
कुलसचिव – 07820–234232
डॉ. एम.एन. झा – 94241–11394
ई–मेल – kalavaibhav@ iksv.ac.in

आवरण चित्र : उमा–महेश्वर की अद्भुत प्रतिमा सिरपुर। इस प्रतिमा के पादपीठ पर श्री गणेश को माता पार्वती का चरण स्पर्श करते हुए एवं माता द्वारा श्री गणेश जी के शीश पर आशीर्वाद के रूप में हाथ रखे हुए प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार का दृश्यांकन अन्यत्र दुर्लभ है।

– प्रधान सम्पादक

Scanned with OKEN Scanner

8.	स्वरूप की संरचना में संज्ञान का आधिपत्य	चैन सिंह नागवंशी 'श्याम'	33-38
9.	Archaeological investigation of Bewarti, Kanker	Dinesh Nandini Parihar Bhenu	39-43
10.	प्राचीन छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	कृष्णकुमार त्रिपाठी	44-53
11.	Resonance Of Lust In Women Imagery With Special References To Ancient Till Medieval Indian Art	Loveneesh Sharma Ms. Srishti Banerjee	54-60
12.	अनन्तशायी विष्णु	मंगलानन्द झा	61-63
13.	Everything is Art: A Reality Check	Maninder Singh Dhunna	64-72
14.	पचोसा से प्राप्त अभिलेख	मीनू अग्रवाल	73-79
15.	छत्तीसगढ़ के नव–उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त मृणकला	मोहन कुमार साहू	80-85
16.	एरण से प्राप्त नवीन सती अभिलेखों का पाठ वाचन एक अनुशीलन	मोहन लाल चढार	86-93
17.	एरण के मूर्तिशिल्प एवं मंदिर स्थापत्य से ज्ञात प्राचीन लोक संस्कृति के विविध पक्ष	नागेश दुबे	94-99
18.	Epigraphical evidences in Vidarbha region (Maharashtra) related to Buddhism	Nishant Sunil Zodape	100-107
19.	खारून नदी घाटी के नव अन्वेषित पुरास्थल: सती स्तम्भ एवं योद्धा प्रतिमाओं के विशेष संदर्भ में	नितेश कुमार मिश्र डालसिंह देवांगन भाग्यश्री दीवान	108-112
20.	विभिन्न स्वरूप की अद्भुत प्राचीन हनुमान प्रतिमायें	प्रसन्न सहारे	113-115
21.	पांडादाह क्षेत्र की स्मारक प्रतिमाएँ	प्रशांत चौरे मंगलानन्द झा	116-119
22.	The Historical Context of Nimlatapurana: Tracing its Evolution and Influence	Rashid Manzoor Bhat	120-126
23.	Exploring the Bene Ephraim: Uncovering the Jewish Identity and Culture in Andhra Pradesh	Ratna Successena Dr.E.V. Padmaja	127-135
24.	Newly discovered Sadabhuja Mahisamardini Durga Image from Lupursingha, Subarnapur, Odisha: An Appraisal	Rudra Prasad Behera Panchanan Mishra Shankar Jai Kishan	136-140
25.	सिरपुर से प्राप्त कलचुरि मुद्राओं का विश्लेषण	शबीना बेगम	141-145
26.	Chalcolithic Culture In Saryupar Region Of Uttar Pradesh	Sandeep Kumar Chaudhary	146-155

Scanned with OKEN Scanner

छत्तीसगढ़ के नव–उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त मृण्मयी मूर्तिकला

मोहन कुमार साहू

भारतीय जीवन के अनन्त स्रोतों का मूल उद्गम लोक संस्कृति है । भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक संस्कृति द्वारा ही हुआ है । लोक संस्कृति अपने प्राकृत रूप में आज भी गांवों, जंगलों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखेहुए हैं । लोक संस्कृति की आत्मा गांवों और जंगलों में रहने वालों के रीति- रिवाजों, लोक गीतों और आचार -विचारों की परंपराओं में निहित है । संस्कृति कभी मरती नहीं, वरन समयानुसार उसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता रहता है ।

आदिवासी बहुल छत्तीसगढ़ क्षेत्र का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इस क्षेत्र में राजिम, सिरपुर, तरीघाट, पचराही, मदकूद्वीप, करकाभाट, मल्हार, देवरी आदि स्थानों से प्राप्त पुरातात्विक संपदा से यहां की मृण्मूर्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मृदभांड एवम् मृण्मूर्तियों की एक अत्यंत प्राचीन परंपरा इस अंचल में पल्लवित होती रही है । मृण्मयी कला मानव की सहज प्रारंभिक कला मानी जाती है । इस अंचल की मृण्मूर्ति यहां की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है ।ये मृण्मूर्तियां एवं मृद्भांड अत्यंत प्राचीन काल से लेकर अद्यतन लगभग एक ही शैली में बनती रही है ।विशिष्ट पर्वों पर या विशिष्ट उद्देश्य एवं अनुष्ठान हेतु इन कला कृतियों का निर्माण किया जाता रहा है । इन मृण्मूर्तियों के निर्माण की न केवल एक सुनिश्चित शैली है वरन् एक सुदीर्घ परंपरा भी प्राप्त होती है।

छत्तीसगढ़ की मृण्मयीकला के अंतर्गत जीवन के विविध पक्षों यथा- धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक के साथ ही साथ फसल चक्र, ऋतु चक्र,कृषि संस्कृति के अनेक प्रतीक चिन्हों एवं देवी - देवताओं तथा लोक - विश्वासों का उद्घाटन होता है । मृण्मयी कला के माध्यम से इस क्षेत्र की लोकमूर्ति कला जीवंत हो उठी है । मृण्मूर्तियों में देवी- देवताओं,नर- नारी, पशु- पक्षियों एवं घरेलू जीवन में उपयोगी मृद्भाण्डो का निर्माण

Scanned with OKEN Scanner

किया जाता है। छत्तीसगढ़ की आदिवासी एवं जनजातियों में देवताओं को प्रायः अश्वरोही योद्धा के रूप में निर्मित किया जाता है। लोग प्रायः योद्धाओं के मरणोपरांत स्मृति स्वरुप स्तंभों एवं प्रस्तर फलकों पर अश्वारोही आकृतियां बनाते हैं । कालांतर में ऐसे व्यक्ति भी देवताओं के समान पूजनीय हो जाते हैं । इन्हें योद्धाओं (देवताओं) की आत्मा को प्रसन्न करने से हेतु मिट्टी की अश्वारोही मूर्तियां या मात्र अश्व ही भेंट स्वरुप प्रदान किए जाते हैं। उदाहरण स्वरुप बस्तर के राव भंगाराम, खंडा कंकालिन, घोड़ादेव, तथा भैरव देव आदि अनेक देवी- देवताओं को खुश करने के लिये अश्वरूढ़ प्रस्तुत किया जाता है।

उत्खनन से प्राप्त मृणकला : प्रारंभ में पुरातत्व से तात्पर्य मात्र उत्खनित स्थलों, पुरावशेषों व कलात्मक वस्तुओं से ही था। पुरातत्ववेत्ता का उद्देश्य प्राचीन महत्त्वपूर्ण व मूल्यवान वस्तुओं को प्रकाश में लाना था। मृद्भाण्ड, जो बहुत कम ही पूर्ण अवस्था में प्राप्त होते हैं, का महत्त्व तब तक नगण्य था। सर्वप्रथम फ्लिण्डर्स पेत्री, आरेल स्टीन एवं मजूमदार ने क्रमशः मिस्र, बलूचिस्तान और सिंध के उत्खनन में मृद्भाण्डों के महत्व को स्थापित किया। भारत में तक्षशिला के उत्खनन से उनका पुरातात्विक महत्व ज्ञात हुआ। हड़प्पा के उत्खनन द्वारा उनकी महत्ता और अधिक सुदृढ़ हो गई। उत्तरी कृष्ण मार्जित, लाल -काले एवं लाल मृद्भाण्डों की प्राप्ति के पश्चात् पुरातत्व के क्षेत्र में मृद्भाण्ड और भी उपयोगी दिखाई देने लगे। इसी तरह से मृद्भाण्ड छत्तीसगढ़ के नव उत्खनित पुरातात्विक स्थलों से प्राप्त किये गये हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के पश्चात् **मल्हार** : यह पुरास्थल बिलासपुर जिला मुख्यालय से लगभग 35 किलोमीटर दूर मस्तूरी तहसील के अंतर्गत स्थित है।

लीलर : यह पुरास्थल धमतरी जिला मुख्यालय से लगभग 20 किलोमीटर दूर महानदी के किनारे पर स्थित है।

तरीघाट : यह पुरास्थल दुर्ग जिला में पाटन तहसील के अंतर्गत खारून नदी के बाएं किनारे पर स्थित ह।

डमरू : यह पुरास्थल बलौदा बाजार जिला मुख्यालय से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर शिवनाथ नदी के दाहिने तरफ नदी से थोड़ी दूर पर स्थित है।

Scanned with OKEN Scanner

पचराही : यह पुरास्थल कबीरधाम जिला में बोड़ला तहसील के अंतर्गत स्थित है।सिरपुर यह पुरास्थल महासमुंद जिला में महानदी के तट पर स्थित है।

राजिम : यह पुरास्थल गरियाबंद जिला में महानदी के तट पर स्थित है । इन पुरास्थलों से प्राप्त मिट्टी के बने हुए मृत्पात्र, खिलौने, पशु-पक्षी की आकृतियां, मिट्टी के बने हुए सिक्के, मिट्टी के अलंकृत मटके, दिये, नांद, मुहरें व अन्य मूल्यवान कलात्मक वस्तुएं प्राप्त हुई हैं जिससे यह स्पष्ट होता है प्राचीन समय में मिट्टी के बनें हुये बर्तनों की उपयोगिता अधिक मात्रा में होता रहा होगा ।

आज के वर्तमान युग में इनकी उपयोगिता भले ही कम हो गई है परंतु मानव जीवन का प्रारंभ ही मिट्टी के बर्तन के साथ हुआ है। जैसे-जैसे मानव विकास करता गया वैसे-वैसे उनके जीवन-शैली में परिवर्तन होता गया। प्राचीन समय में उपयोग किए जाने वाल्ले पात्र-परम्पराआज हमें उत्खनन से पुरावशेषों के रुप में प्राप्त होतेहैं और अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति का ज्ञान करातेहैं ।

छत्तीसगढ़ की मृत्तिका कला उसकी सांस्कृतिक चेतना की एक प्रमुख देन है। यहां की प्रस्तर की मूर्तियों में प्रधानतः धार्मिक विषयों का अंकन हुआ है किंतु मिट्टी की कला में लोक जीवन का प्रतिबिंब उतरा है , विषयवस्तु की दृष्टि से इसकी कोई सीमा नहीं है। मृत्तिका कला लोक जीवन से ओत- प्रोत थी। इसको तत्कालीन समाज का प्रलेख कहा जा सकता है। इसकी लोक व्यापिनी शक्ति का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि छत्तीसगढ़ में यह अनेक शताब्दियों तक एक लोकप्रिय माध्यम बनी रही।

छत्तीसगढ़ अंचल की मृण्मयमूर्तियों में विविध प्रकार की पशु- पक्षियों यथा- हाथी, घोड़े, सिंह, नन्दी,बंदर आदि की मूर्तियों को बनाए जाने की विशिष्ट परम्परा है। हाथी वैभव एवं शालीनता का द्योतक है। अतः उसे धन - धान्य की देवी श्रीदेवी के वाहन के रूप में स्वीकार किया गया है। शक्ति के प्रतीक सिंह या बाघ को शक्ति की देवी (दुर्गा -शीतला- दंतेश्वरी देवी आदि) के वाहन के रूप में पूजा जाता है। गति और शौर्य के प्रतीक अवयव को योद्धाओं के वाहन के रूप में मान्य किया गया है। इस क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों के पूजा स्थलों पर (जिसे मैदानी भाग में

Scanned with OKEN Scanner

माता देवालय और अरण्य क्षेत्र (बस्तर) में मातागुडी कहते हैं) मृण्यमूर्तियों को अर्पित करते हैं। जब उनकी कोई मन्नत (इच्छा)पूरी हो जाती है , तो वे अपने इष्ट देवता के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के उद्देश्य से कुम्हारों से मिट्टी की मूर्तियां बनवाकर भेंट स्वरुप अर्पित करते हैं। इस प्रकार की मृण्मयमूर्तियों को अर्पित करने का उद्देश्य ग्रामीणों का ऐसे पशुओं की पराशक्तियों में आस्था होना माना जाता है।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पशु आकृतियों में सर्वाधिक मृण्मयीमूर्तियां नंदी अथवा नांदियां बैल की बनाई जाती है। नंदी कृषि (संस्कृति) का प्रतीक है तथा सभी भारतीयों के लिए पूजनीय है। कृषि कार्य में उनकी महत्ता को समझकर उसकी पूजा की जाने लगी । प्रजनन शक्ति के प्रतीक शिव-लिंग के साथ उसकी स्थापना की गई। प्रजनन की भावना की दृष्टि से यदि शिवलिंग की आराधना आवश्यक मानी जाती थी, तो भरण -पोषण के लिए नंदी का उतना ही महत्व स्वीकार किया गया।

छत्तीसगढ़ में भाद्र मास में पोला त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर कुम्हारों द्वारा बनाई जाने वाली मृण्मूर्तियों में नंदी की मूर्तियां प्रमुख होती है, जिनकी पूजा की जाती है । संपूर्ण अंचल में इस त्यौहार में सभी घरों में खुर्मी-ठेठरी नामक विशिष्ट पकवान बनाया जाता है। इसी पकवान से नंदी की पूजा का विधान है। उल्लेखनीय है कि खुर्मी- ठेठरी जो क्रमशः शिवलिंग और योनि (जलहरी) का प्रतीक होती है। इस प्रकार प्रजनन शक्ति के देवता शिव -पार्वती को प्रतीक रूप (खुर्मी-ठेठरी) को मिट्टी से बने नंदी पर आरूढ़ कर पूजा जाता है। पूजा के पश्चात् नंदी के पैरों में पहिया लगाकर बैलगाड़ी बनाकर बच्चों को खेलने को दिया जाता है ।

दीपावली के अवसर पर विविध प्रकार के कलात्मक दीपों को बनाने की परंपरा मिलती है । इन दीपों में लक्ष्मी दीपक, गज लक्ष्मी दीपक, ग्वालिन दीपक, स्तंभ दीपक आदि प्रमुख होते हैं। इन दीपकों में निर्मित सभी अभिप्राय शुभ एवं मांगलिक होते हैं। समृद्धि की प्रतीक गजलक्ष्मी एवं लक्ष्मी दीपक का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। समाज को पशुपालन अवस्था के महत्व को

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिपादित करती ग्वालिन दीपक में ग्वालिन कोसिर पर पात्र लिए बनाया जाता है। उसके हाथों एवं प्रभामंडल में दीप सजाए जाते हैं। आभामंडल से ऐसा प्रतीत होता है कि ग्वालिन 'श्रीदेवी लक्ष्मी' का ही कोई लोक स्वरुप है। इसमें दीपों की संख्या पांच,सात,नौ या ग्यारह की विषम संख्या में होती है। इसी अवसर पर लक्ष्मी के साथ ही गणेश की मूर्तियां भी बनाई जाती हैं । इसके अतिरिक्त विविध अभिप्रायों यथा- हाथी, उल्लू , चूहा आदि से युक्त गुल्लकें भी बनाने की परंपरा है । प्रेत एवं दुष्टात्माओं से रक्षा हेतु रायगढ़ और सरगुजा आदि क्षेत्रों में ग्रामीणों के घरों की छप्पर (कवेलू) के शीर्ष पर पशु -पक्षियों के आकृतियों को बनाकर लगाने की परंपरा का प्रचलन है।

पक्षियों से संबंधित दीपों में सुआ अभिप्राय दीप विशेष प्रचलित है । सुआ छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रिय विषय है । संदेश वाहक सुआ अभिप्राय वाले दीपक को प्रायः वे स्त्रियां जलाती हैं, जिनके पिया परदेश गये हुए होते हैं। इस क्षेत्र में देव -उठनी के अवसर पर मिट्टी के मिट्टी के खिलौने बनाने की समृद्ध परंपरा है। बच्चों को खेलने हेतु मिट्टी की गाड़ी , चक्की -चूल्हा , रसोई की भोजन पकाने के विविध पात्र आदि प्रदान किए जाते हैं ,जिन्हें यहां के कुम्हार लोग बनाते हैं ।

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में मृण्मूर्तियों को बनाने का कार्य कुम्हार जाति के लोग परंपरा से करते हैं। इन कलाकारों द्वारा निर्मित मूर्तियां संपूर्ण भारत में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । विशेष रूप से हाथी एवं घोड़ों की छोटी एवं आदमकद तक बनने वाली मूर्तियां अपनी कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है । इस प्रकार की मूर्तियों को लोग अपने कलाकक्ष में प्रदर्शित साज-सज्जा कर गौरवान्वित होते हैं। प्राचीन काल से बनने वाली ये मूर्तियां आज भी अपने प्राचीन रूप को अपने में समेटे हुए हैं । इस प्रकार एक सुदीर्घ कला एवं सांस्कृतिक परंपरा को धरोहर के रूप में बचाए हुए छत्तीसगढ़ की मृण्कला आज भी एक जीवंत धारा के रूप में विद्यमान है ।

संदर्भ -ग्रंथ

1. कला वैभव

2. निहारिका, प्राचीन भारतीय पुरातत्व अभिलेख एवं मुद्राएँ, पृ.46

Scanned with OKEN Scanner

3. पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय कला, पृ. 201
4. तरीघाट, एक्सकेवेशन रिपोर्ट, पृ. 103-05
5. पचराही, एक्सकेवेशन रिपोर्ट, पृ. 56-57
6. कोसल अंक 10, वर्ष, 2017, पृ. 46-51
7. प्रधान, अतुल, वाजपेयी, शिवाकांत, एक्सकेवेशन इन छत्तीसगढ़, पृ. 23-41

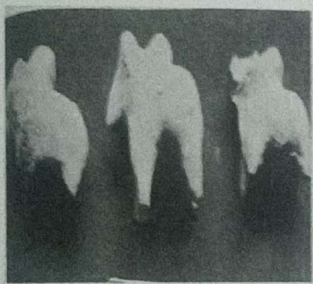

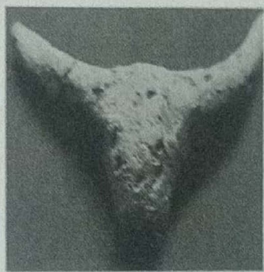

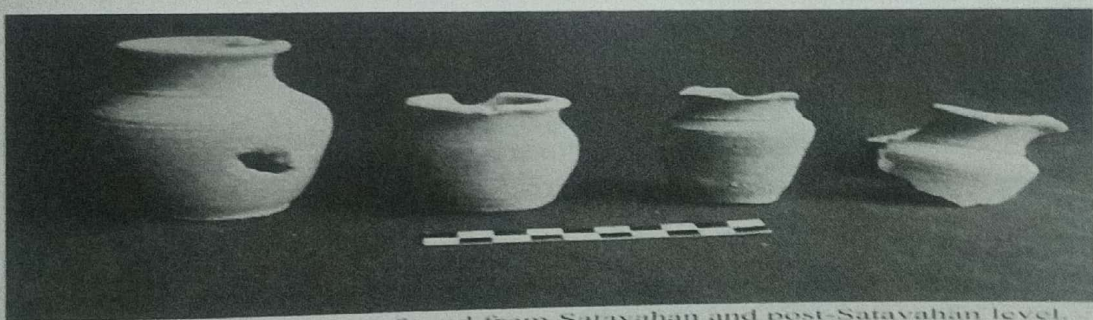

Pl.229. Various potteries found from Satavahan and post-Satavahan level.